येरूशेलमः राजधानी विवाद

अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप ने अपने एक अप्रत्याशित घोषणा से एक नये संकट को जन्म दे दिया है, उन्होंने यह एलान किया है कि अमेरिका इस्राइल में अपने राजदूतावास को तेलअबीब से स्थानांतरित कर तत्काल येरूशेलम ले जा रहा है। जाहिर है कि उनके इस फैसले का बेंजेमिन नेतिन याहू ने स्वागत किया है और यह कहा है कि इससे अमेरिका और इस्राइल के संबंध और मजबूत होंगे। पर बाकी विश्व में अमेरिका के मित्रों ने भी इस बारे में संयम बरतना बेहतर समझा है। जहां तक पश्चिम एशिया का सवाल है, वहां अमेरिका के इस 'नीति परिवर्तन' के विरोध में बड़े पैमाने पर जनाक्रोश को मुखर करने वाले प्रदर्शन होने लगे हैं। हिंसक झड़पों में एक फिलीस्तीनी की मौत हो चुकी है और यह संभावना प्रबल है कि आने वाले दिनों में कुछ और मासूम की जाने जा सकती हैं और इस क्षेत्र में सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंच सकता है। यह प्रदर्शन अरब जगत तक ही सीमित नहीं,बल्कि दक्षिण एशिया में कश्मीर की घाटी में भी फिलीस्तीनियों के साथ धर्म के आधार पर भाईचारा जताने वाले अलगाववादी तत्व नारेबाजी पर उतर आये हैं।

यहां दो-तीन बातों को आरंभ में ही स्पष्ट करने की जरूरत है। इस्राइल की राजधानी भले ही औपचारिक रूप से तेलअबीब में बरसों से काम कर रही है और वहीं अधिकांश देशों के दूतावास हैं, राष्ट्रवादी यहूदियों का हठ है कि अंततः यहूदी राष्ट्र की राजधानी ऐतिहासिक नगर येरूशेलम में ही स्थापित होनी चाहिए। जहां तक अमेरिका का प्रश्न है ट्रंप के फैसले को नीति परिवर्तन नहीं कहा जा सकता क्योंकि अमेरिकी प्रशासन ने यह बात पहले ही स्वीकार कर ली थी कि उचित समय पर अमेरिका अपना दूतावास येरूशेलम ले जायेगा। जो सवाल पूछा जाना चाहिए, वह यह है कि क्यों ट्रंप को इस समय यह महसूस हुआ कि अमेरिकी दूतावास के स्थानांतरण का सही समय आ पहुंचा है?

इस बात को अनदेखा करना कठिन है कि येरूशेलम का ऐतिहासिक नगर न केवल यहूदियों की संस्कृति उनकी भावनाओं के साथ जुड़ा है, बल्कि उसकी पवित्र स्थल के रूप में इतनी ही प्रतिष्ठा ईसाइयों और मुसलमानों के लिये भी है। अपने धर्मस्थल तक इन संप्रदायों की तीर्थयात्री अपनी पहुंच अबाद रखना चाहते हैं और इनको लगता है कि इस्राइल की राजधानी बनने के बाद और बढ़ गई सामरिक संवेदनशीलता के कारण सुरक्षा कवच अधिक मजबूत कर दिया जाएगा और तरह-तरह की अड़चने पैदा होंगी। यह आशंका भी नाजायज़ नहीं कि क्रमशः यहूदी राजधानी के रूप में इस नगर का रूपांतरण इसकी बहुलवादी सांस्कृतिक पहचान का क्षय करेगा।

जब से कैम्प डेविड समझौते के बाद फिलीस्तीनियों और इस्राइलियों के बीच कमोबेश युद्ध विराम जैसी स्थिति जारी है तब से यह आशा जगने लगी थी कि इस्राइल कट्टरपंथी और फिलीस्तीनी उग्रवादी दोनों ही पक्ष शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिय तैयार हो रहा है। इस्राइल में एक राज्य और दो व्यवस्थाओं वाला समाधान लागू किया गया। भले ही फिलीस्तीनी प्राधिकरण को संप्रभु राज्य जैसी स्वाधीनता नहीं प्रदान की गई,उसे अपने अधिकार वाली भूमि में स्थानीय शासन की स्वायत्ता सौंप दी गई। भले ही फिलीस्तीनियों को निरंतर यह शिकायत रही है कि इस्राइल इस स्वायत्ता में लगातार कटौती करता है और यह नहीं चाहता कि यह ज़मीन

पहले एक स्वाधीन प्रदेश और फिर एक राज्य के रूप में उभर सके। दूसरी ओर इस्राइलियों की यह शिकायत निराधार नहीं कि फिलीस्तीनी दहशतगर्द इस भू-भाग में शरण ले इस्राइली ठिकानों को निशाना बनाते रहे हैं और अपने प्रक्षेपास्त्रों से इस्राइल को लहुलूहान करते रहते हैं। इस सब का कुल नतीजा यह हुआ कि एक राज्य में दो व्यवस्थायें ईमानदारी से लागू नहीं की जा सकी। इस्राइल ने युद्ध के बाद फिलीस्तीनियों की जिस ज़मीन पर कब्जा कर लिया था, उस पर यहूदियों को बसाने का काम तेजी से जारी है और इस्राइल के अरब पड़ोसियों को लगता है कि इस्राइल धीरे-धीरे न केवल अपने कब्जे की ज़मीन का विस्तार बढ़ा रहा है बल्कि फिलिस्तीनियों का उस इलाके में भी जीना दूभर करता रहा है, जिस पर उनका न्यायसंगत अधि कार है। येरूशेलम को राजधानी बनाने का हठ उनकी नज़र में इसी साजिश का एक हिस्सा है।

जहां तक ट्रंप की बात है सिर्फ यह कहने से बात पूरी नहीं हो जाती कि वह तो कोई भी फैसला बिना सोचे-समझे उतावलेपन में ले लेते हैं जिसे बाद में अमेरिका का विदेश विभाग या रक्षा विभाग तर्कसंगत साबित करने की कोशिश करता है। अबतक ट्रंप व्हाइट हाऊस में एक वर्ष पूरा कर चुके हैं और उन्हें राजनय के मामले में बिल्कुल अनुभवहीन नहीं कह सकते। अमेरिका के पारंपरिक बैरियों को बड़बोलेपन के साथ चुनौती देने वाले ट्रंप एक से अधिक बार नरम पड़ने और पीछे हटने को मज़बूर हो चुके हैं। चीन और उत्तर कोरिया के बारे में यही देखने को मिला। तब क्या यह कल्पना की जा सकती है कि ट्रंप क्या इस बार भी इस्राइल के पक्ष में अपने इस फैसले को अरबों की नाराजगी दूर करने वाले कदम से संतुलित करेंगे।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि भले ही अरबों को सन्तुष्ट करने के लिये ट्रंप चाहे जा कदम उठाये फिलीस्तीनियों के आक्रोश को वह दूर नहीं कर सकते और नहीं, अब उनके किसी भी फैसले से वह लपटें शांत होंगी जो पश्चिम एशिया के बाहर मुस्लिम बहुल आबादी वाले देशों में भड़क रही है। ईरान ही नहीं पाकिस्तान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, मलेशिया आदि में ट्रंप के फैसले की जबर्दस्त आलोचना हुई है। अमेरिका के ऊपर इस्लाम विरोधी होने का जो आक्षेप लगाया जाता रहा है वह इस अदूरदर्शी फैसले के कारण सच साबित होता नज़र आ रहा है।

कुछ विश्लेषकों ने यह सुझाया है कि ट्रंप ने यह फैसला बिना सोचे-समझे नहीं लिया है। अबतक मीडिया में उनकी आलोचना ही होती रही है, कभी चुनावों में रूसी सहायता के आरोपों की वजह से तो कभी ओबामा की जनहितकारी नीतियों को पलटने के कारण। भाई-भतीजावाद और कुनबापरस्ती के आरोप भी उन पर लगते रहे हैं। इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि वह कुछ ऐसा कर दिखाने को आतुर है जो उनके पहले किसी अमेरिकी राष्ट्रपति ने करने की हिम्मत नहीं दिखाई। ट्रंप की नज़र में अमेरिका के राजदूतावास को तेलअबीब से हटाकर येरूशेलम ले जाने का फैसला उनकी दिलेरी को ही जगजाहिर करेगा। इसके अलावा जबतक यह बहस गरम रहती है, तबतक कोई ट्रंप प्रशासन से यह सवाल नहीं पूछेगा कि उत्तरी कोरिया पर अकुंश लगाने में वह क्यों असमर्थ रहे है और पुतिन की चुनौती का सामना वह कैसे करने वाले हैं?

दिक्कत भारत जैसे देशों की सबसे ज़्यादा है। भारत में फिलीस्तीनी राजदूत ने इस फैसले के बाद यह वक्तव्य देते देर नहीं लगाई कि निकट भविष्य में ही प्रधानमंत्री मोदी फिलीस्तीन का दौरा करेंगे। भारत के विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने भी यह कहना जरूरी समझा कि भारत इस्राइल और मध्यपूर्व के बारे में किसी दूसरे देश की नीति के अनुसार नहीं, बल्कि अपनी स्वाधीन नीति के अनुसार आचरण करता है। एक तरह से यह थोड़ी सी मोहलत हासिल करने का प्रयास लगता है। अतीत में अरबों और फिलीस्तीनियों के साथ भारत के संबंध बेहद मैत्रीपूर्ण रहे हैं और इस्राइल के करीब जाने से हम कतराते रहे हैं। पर हाल के दशकों में इस्राइल के साथ भारत के आर्थिक और सामरिक संबंध तेजी से मजबूत हुये हैं और खासकर कट्टरपंथी इस्लामी आतंकवाद की चुनौती के कारण इस्राइल के साथ प्रकट और गुप्त सहकार की संभावनायें बढ़ी है। आज इस्राइल सैनिक साजसामन की खरीद के मामले में ही नहीं परिष्कृत टैक्नोलॉजी के मामले में भारत का एक अहम साझेदार है। भारत का काम इस कारण थोड़ा सहज हुआ है कि इस्राइल भारत की आबादी में मुसलमान मतदाताओं की संख्या को देखते हुए यह समझता है कि वह इस्राइल के साथ अपने संबंधों की घनिष्ठता को क्रमशः ही सार्वजनिक बना सकता है। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय राजनयिक महत्व को देखते हुए वह धीरज रखने को तैयार है। निश्चय ही उसकी कोई अपेक्षा यह नहीं कि वह अमेरिका की तरह अपने दूतावास का स्थानांतरण करेगा या अमेरिका के इस फैसले का स्वागत अथवा समर्थन करेगा। इस्राइल इतने में ही संतुष्ट है कि सैनिक साजसामान की खरीद पर्यटन विकास और वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आदान-प्रदान निरंतर गतिशील हो रहा है।

भारत के लिये इस समस्या का राजनयिक पक्ष उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना आंतरिक राजनीति पर पड़ने वाला इसका दुष्प्रभाव। कश्मीर में ट्रंप के फैसले विरूद्ध भड़के प्रदर्शनों पर नियंत्रण पाने की जिम्मेदारी भारतीय सुरक्षा बलों की रहेगी और वही एकबार फिर बलप्रयोग या मानवाधिकारों के हनन के आक्षेपों का सामना करने को मजबूर होंगे। इसबारे में भी दोराय नहीं हो सकती कि ट्रंप के इस फैसले से मध्यपूर्व की राजनीति भी अस्थिर होगी और यह अनुमान लगाना कठिन है कि इसका क्या परिणाम होगा?

❑❑❑